श्रीवीतरागाय नमः।

श्रीरयधु-कवि-कृत

दशलाक्षणिकधर्मजयमाला

संस्कृतपूजाष्टक और भाषानुवादसहित



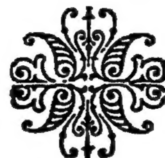
प्रकाशक—श्रीजैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

मुद्रक—"श्रीसरस्वती" मुद्रणालय, बम्बई.

आषाढ़, वीरनिर्वाणसंवत् २४४९। ईस्वी सन् १९२३।

द्वितीय संस्करण १०००] [मूल्य पाँच आने।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग–बम्बई ।



मुद्रक—
अनंत बाळकृष्ण घगवे,
'श्रीसरस्वती' मुद्रणालय,
५२४, गिरगांव–मुंबई.

कविका परिचय।

दशलक्षणजयमालाके कर्त्ताका नाम रयधू या रइधू है। इनके बनाये हुए आदिपुराण नामक ग्रन्थसे जो इसी जयमालाके समान अपभ्रंश भाषामें है और जिसका 'मेघेश्वरचरित' नामसे उल्लेख किया गया है—मालूम होता है कि ये संघवीय (संघाधिप) हरिसिंहके पुत्र और देवराजके पौत्र थे—

णंदउ सिरिहरिसिंघ संघाहिउ, देवराजसुउ, पवरगुणाहिउ।
जस्स संताणि कईसु अमच्छरु, रइधू संजायउ गुणकोच्छरु॥
जेण चरिउ उसहेणहु केरउ, विरयउ बुहयणसुक्खजणेरउ॥

ये माथुरसंघ पुष्करगच्छके आचार्य यशःकीर्तिके शिष्य और गुणकीर्तिके प्रशिष्य थे। इन आचार्योंकी गद्दी गोपाचल या ग्वालियरमें थी। जान पड़ता है कि उक्त कविवरने पीछे जिनदीक्षा ले ली थी और तब उनका नाम सिंहसेन रक्खा गया था। ×

आदिपुराण खेमसिंह या क्षेमराज नामक एक धनी गृहस्थके निमित्त रचा गया था। उसकी प्रत्येक सन्धिके अन्तमें आदिपुराणको 'महाभव्वखेमसीसाहुणामंकिए' विशेषण दिया है और एक एक संस्कृत पद्य देकर खेमसिंहका गुणकीर्तन किया गया है। यथा—

सर्वज्ञपादार्चनसूरिदाने आभाति यस्यात्र सदैव भूतिः।
चित्ते च विज्ञानकलावतारः सोनन्दताच्छ्री भुवि क्षेमराजः॥

ये क्षेमसिंह साहु जातिके अग्रवाल थे और तोमरवंशके राजा डूंगरसिंहके राज्यमें निवास करते थे। डूंगरसिंह ग्वालियरके राजा थे। उनकी रानीका नाम चंदादेवी और पुत्रका कीर्तिसिंह था। क्षेमसिंह

× जैनहितैषी भाग १३, अंक ३ में सुहृद्वर बाबू जुगलकिशोरजीने उक्त आदिपुराणका विस्तृत परिचय दिया है और अधिकांशमें उसीके आधारसे यह लेख लिखा गया है। परन्तु उसमें जो रइधूको सिंहसेनका बड़ा भाई बतलाया है, सो ठीक नहीं मालूम होता। हमारे खयालमें रइधू और सिंहसेन दोनों एक ही हैं।

(खेमसी, क्षेमराज और खेऊसाहु) के पिताका नाम पजणसाहु, माताका वील्हाही, पितामहका पुण्यपाल और स्त्रीका धनश्री था। धनश्रीके गर्भसे उनके चार पुत्र हुए थे—सहसराज, पहराज, रतिपति और होल्ल। ये चारों ही बड़े धर्मात्मा और विद्वान् थे। सहसराजने गिरनारको संघ चलाया था और पहराजको राजाने उसकी बुद्धिमत्ताके कारण अपने पास रक्खा था। इन सब पुत्रोंके भी अनेक पुत्र पुत्रियाँ थीं।

दशलक्षणजयमालामें उक्त खेमेराजके ही चतुर्थ पुत्र होल्ल साहुका उल्लेख है—" भो खेमसिंहसुय भव्वाविणुयजुय होलुव मण इह करहु थिरु। " बहुतसे लोग इसका अर्थ ' खेमसिंहकी पुत्री होली ' करते हैं, सो अशुद्ध है। हमने अबकी बार इस अनुवादमें उक्त संशोधन कर दिया है।

इनका समय विक्रमकी सोलहवीं शताब्दि है। जैनसिद्धान्तभवन आरामें ' ज्ञानार्णव ' ग्रन्थकी लेखक–प्रशस्तिमें लिखा है—

" संवत् १५२१ वर्षे आपाढ सुदी ६ सोमवासरे श्रीगोपाचलदुर्गे तोमरवंशे राजाधिराज श्रीकीर्तिसिंह–राज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ० श्रीगुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीयशःकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीमलयकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीगुणभद्रदेवास्तदाम्नाये——"

इससे मालूम होता है कि १५२१ में तोमरवंशी राजा कीर्तिसिंहका राज्य था और इन्हीं तोमरवंशी कीर्तिसिंहको आदिपुराणमें डूंगरसिंहका पुत्र बतलाया है। इसमें गुणकीर्ति और यशःकीर्तिका भी उल्लेख है। अतः आदिपुराण इसी समयसे कुछ पहले बना है, अतएव रइधूका भी समय यही समझना चाहिए।

' दिगम्बरजैनग्रन्थकर्ता ' और उनके ग्रन्थमें रइधू कविके बनाये हुए नीचे लिखे ग्रन्थोंका उल्लेख है—

श्रीपालचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, व्रतसार, कारणगुणषोडशी, दशलक्षणजयमाला, रत्नत्रयी, मेघेश्वरचरित्र (आदिपुराण), षड्धर्मोपदेशरत्नमाला, भविष्यदत्तचरित्र, करकंडुचरित्र। ये सब ग्रन्थ भी अपभ्रंश भाषामें ही होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

निवेदक—नाथूराम प्रेमी।



नमः सिद्धेभ्यः

अथ दशलाक्षणिकधर्मपूजा

श्लोक ।

उत्तमक्षान्तिमाद्यन्तब्रह्मचर्यंसुलक्षणम् ।
स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्रावतरावतर । संवौषट् । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्र तिष्ठ, तिष्ठ । ठः ठः । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्म्म अत्र मम सन्निहितो भव, भव । वषट् ।

अथाष्टकम् ।

प्रालेयशैलशुचिनिर्गतचारुतोयैः
शीतैः सुगन्धसहितैर्मुनिचित्ततुल्यैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

श्रीचन्दनैर्बहलकुङ्कुमचन्द्रमिश्रैः
संवासवासितदिशासुखदिव्यसंस्थैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

शालीयशुद्धसरलामलपुण्यपुञ्जै
रम्यैरखण्डशशलाञ्छनरूपतुल्यैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

मन्दारकुन्दवकुलोत्पलपारिजातैः
पुष्पैः सुगन्धसुरभीकृतमूर्द्ध्वलोकैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अत्युत्तमै रसरसादिकसद्यजातै-
नैवेद्यचित्तपरितोषितभव्यलोकैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपैर्विनाशितसमस्ततमोवितानैः
कर्पूरवर्तिकनकोज्ज्वलभाजनस्थैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

कृष्णागुरुप्रभृतिसर्वसुगन्धद्रव्यै-
धूपैस्तिरोहितादिशामुखादिव्यधूम्रैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

पूगैर्लवङ्गकदलीवरनालिकेरै-
र्हृद्घ्राणनेत्रसुखदैः शिवदानदक्षैः ।
सम्पूजयामि दशलक्षणधर्ममेकं
संसारतापहननाय क्षमादियुक्तम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

पानीयस्वच्छहरिचन्दनपुष्पसारैः
शालीयतन्दुलनिवेद्यसुचन्द्रदीपैः ।
धूपैः फलावलिविनिर्मितपुष्पगन्धैः
पुष्पाञ्जलीभिरपि धर्ममहं समर्चे ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

इति दशलक्षणधर्मपूजा समाप्ता ।

श्रीरयधु-कवि-विरचिता

दशलाक्षणिकजयमाला ।

अथ उत्तमक्षमाधर्मांगम् ।

येन केनापि दुष्टेन पीडितेनापि कुत्रचित् ।
क्षमा त्याज्या न भव्येन स्वर्गमोक्षाभिलाषिणा ॥१॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय गन्धम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांमाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय पुष्पम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय चरुम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय दीपम् नि० । ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय धूपम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय फलम् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—कहीं पर किसीदुष्टके द्वारा पीडा होनेपर भी स्वर्ग और मोक्षके अभिलाषी भव्यजीवको क्षमाका त्याग कभी नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

उत्तमखम मद्दउ अज्जउ सच्चउ पुण सउच्च संजम सुतओ ।
चाउ वि आकिंचणु भवभयवंचणु बंभचेरु धम्म जु अखओ ॥१॥

अर्थ—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आर्किंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य ये आत्माके अक्षय धर्म हैं। किसी दुष्टपुरुषके अपशब्द कहने, मारने, पीटने, शरीरका घात करनेपर भी जो क्रोध नहीं करना, कर्मोंका फल जानकर उसको सहना सो उत्तम क्षमा है ॥ १ ॥ मानकषाय (अहंकार) को छोड़कर नम्रीभूत परिणाम होना सो उत्तम मार्दव है ॥ २ ॥ मायाकषायके अभाव होते हुए जो सरल परिणामोंका होना सो उत्तम आर्जव है ॥ ३ ॥ सत्य संभाषण करना उत्तम सत्य है ॥ ४ ॥ लोभका त्याग करना उत्तम शौच है। व्यवहारमें स्नानादिक भी शौच कहा है ॥ ५ ॥ छहकायके जीवोंकी

रक्षा करना तथा इन्द्रिय और मनको वशमें करना सो उत्तम संयम है ॥ ६ ॥ कायोत्सर्गादिक करना उत्तमतप है ॥ ७ ॥ ज्ञानादिकका दान देना उत्तम त्याग है ॥ ८ ॥ बाह्यआभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग करना उत्तम आकिंचन्यधर्म है ॥ ९ ॥ स्त्रीमात्रका त्याग करना अथवा अपने आत्मामें ही लीन होना सो उत्तम ब्रह्मचर्य है ॥ १० ॥ इन सबमें उत्तम विशेषण सम्यक्त्वसहित होनेके लिये दिया है ॥ १ ॥

उत्तमखम तिल्लोयह सारी । उत्तमखम जम्मोदहितारी ॥
उत्तमखम रयणत्तयधारी । उत्तमखम दुग्गइदुहहारी ॥ २ ॥

अर्थ—तीनों लोकोंमें उत्तम क्षमा ही सब धर्मोंमें सार है । उत्तम क्षमा जन्ममरणरूपी समुद्रसे पार कर देनेवाली है । उत्तम क्षमा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनों रत्नोंको धारण करनेवाली है । जहां उत्तमक्षमा होती है वहां रत्नत्रय होते ही हैं और उत्तम क्षमा नरकादिक दुर्गतिके समस्त दुःखोंको हरण करनेवाली है ॥ २ ॥

उत्तमखम गुणगणसहयारी । उतमखम मुणिविंदपियारी ॥
उत्तमखम बुहयणचिंतामणि । उत्तमखम संपज्जइ थिरमणि ॥३॥

अर्थ—उत्तम क्षमा गुणसमूहोंके साथ रहनेवाली है । अर्थात् उत्तम क्षमाके होनेसे अनेक गुण प्रकट हो जाते हैं । यह उत्तम क्षमा मुनियोंको बड़ी प्यारी है । श्रेष्ठमुनिजन इसका पालन करते हैं । यह उत्तम क्षमा विद्वानोंकेलिये चिन्तामणि है, अर्थात् चिन्तामणिरत्नके समान इच्छित पदार्थोंकी देनेवाली है । इसीतरह विद्वज्जनोंको उत्तम क्षमासे इच्छित ज्ञानादिक प्राप्त होते हैं । ऐसी यह उत्तम क्षमा चित्तकी एकाग्रता होनेसे उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

उत्तमखम महणिज्ज सयलजणि । उत्तमखम मिच्छत्ततमोमणि ॥
जहिं असमत्थह दोस खमिज्जइ । जहिं असमत्थह णउ रूसिज्जइ ॥४॥

जहिं आक्कोसणवयण सहिज्जइ। जहिं परदोस ण जणि भासिज्जइ ॥
जहिं चेयणगुण चित्त धरिज्जइ। तहिं उत्तमखम जिण भासिज्जइ ॥५॥

अर्थ—यह उत्तम क्षमा समस्त लोकमें पूजित है और मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर करनेके लिये मणिके समान है। जैसे प्रकाशमान मणिसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी तरह उत्तमक्षमासे मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व प्रकट होता है। जहां असमर्थ-जीवोंके दोष क्षमा किये जाते हैं, जहां असमर्थोंके ऊपर क्रोध नहीं किया जाता, जहां आक्रोशवचनोंका (गाली गलौज आदिका) सहन किया जाता है, जहां दूसरेके दोष प्रकट नहीं किये जाते और जहां चित्तमें आत्माका चैतन्यगुण धारण किया जाता है वहां ही उत्तमक्षमा होती है, ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४ ॥ ५ ॥

घत्ता।

इय उतमखमजुय णरसुरखगणुय केवलणाणु लहेवि थिरू।
हुइ सिद्ध णिरंजण भवदुहभंजण अगणियरिसिपुंगम जि चिरू॥६॥

अर्थ—जिसका निरूपण ऊपर कर चुके हैं ऐसी उत्तम क्षमाके धारण करनेवाले पुरुषको मनुष्य देव और विद्याधर सभी नमस्कार करते हैं और वह अचल केवलज्ञानको पाकर अनेक ऋषियोंमें श्रेष्ठ, संसारके दुःखोंसे रहित होताहुआ निरंजन सिद्ध है और वहांके अनन्तसुख अनन्तकालतक भोगता रहता है। इसलिये सबको उत्तमक्षमा सदा धारण करनी चाहिये ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांगाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ मार्दवधर्मांगम् ।

मृदुत्वं सर्वभूतेषु कार्यं जीवेन सर्वदा ।
काठिन्यं त्यज्यते नित्यं धर्मबुद्धिं विजानता ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा—ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ—जो धर्मबुद्धिको जानते हैं ऐसे जीवोंको उचित है कि वे समस्त जीवोंमें सदा मृदुता रक्खें और कठिन परिणामोंका सदा त्याग करें ॥ २ ॥

मद्दउ भवमद्दणु माणणिकंदणु दयधम्मह मूल जि विमलु ॥
सव्वह हिययारउ गुणगणसारउ ति सउ(?)बओ संजम सयलु ॥ १ ॥

अर्थ—यह मार्दवधर्म जन्ममरणरूप संसारका नाश करनेवाला है। मानकषायको सर्वथा दूर कर देनेवाला है। दयाधर्मका मूल कारण है। यह आत्माका एक अक्षय और निर्मल गुण है। समस्त जीवोंका हित करनेवाला है। आत्माके समस्त गुणोंमें सारभूत गुण यही है। इस मार्दवधर्मके होते हुए ही समस्त व्रत और संयम सफल होते हैं ॥ १ ॥

मद्दउ माणकसायविहंडणु। मद्दउ पंचेंदियमणदंडणु ॥
मद्दउ धम्मे करुणावल्ली। पसरइ चित्तमहीहिं णवल्ली ॥ २ ॥

अर्थ—मार्दवधर्म मानकषायको नाश करनेवाला है। तथा पांचों इंद्रिय और मनको निग्रह करनेवाला भी मार्दवधर्म है। इस मार्दवधर्मके प्रभावसे ही इस मनुष्यकी चित्तरूपी पृथ्वीमें नवीन करुणारूप वेल फैलती है। भावार्थ—अहिंसाधर्मका कारण करुणा है और करुणा मार्दवधर्मसे ही होती है ॥ २ ॥

मद्दउ जिणवरभत्ति पयासइ। मद्दउ कुमइपसरु णिण्णासइ ॥
मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ। मद्दवेण जण वइरो हट्टइ ॥ ३ ॥

अर्थ—मार्दवधर्मसे जिनेन्द्रदेवकी भक्ति प्रकाश होती है और मार्दवधर्म कुमतिके प्रसारको नाश करता है, अर्थात् मार्दवधर्म होंतेहुए कुमति नहीं रहने पाती। दर्शन–ज्ञान–चारित्र–विनय और व्यवहार–विनय मार्दवधर्मसे ही बढती है । और मार्दवधर्मसे लोकमें अनेक तरहके वैर भी दूर हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मद्दवेण परिणामविसुद्धी । मद्दवेण विहुलोयहु सिद्धी ॥
मद्दवेण दोविहु तउ सोहइ । मद्दवेण णर तिजगु विमोइह ॥ ४ ॥

अर्थ—मार्दवधर्मसे आत्माके परिणाम अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं । मार्दवधर्मसे इसलोक और परलोकसंबंधी कार्य सिद्ध होते हैं। अभ्यन्तर तप और बाह्य तप दोनों मार्दवधर्मसे ही शोभायमान होते हैं । मार्दवधर्मकी ऐसी महिमा है कि इसके होते हुए मनुष्य तीनों जगतको मोहित कर लेता है ॥ ४ ॥

मद्दउ जिणसासण जाणिज्जइ । अप्पापरसरूव भासिज्जइ ॥
मद्दउ दोस असेस णिवारइ । मद्दउ जम्मउअहि उत्तारइ ॥ ५ ॥

अर्थ—एक जैनशासन ही ऐसा है कि जिसमें मार्दवधर्म जाना जाता है, अर्थात् दूसरे मतोंमें ऐसे उत्तमधर्मकी गणना भी नहीं की है। इसीके द्वारा आत्माका और आत्मासे भिन्न पुद्गलादिकका स्वरूप जाना जाता और निश्चय किया जाता है। एक ही मार्दवगुणके होनेसे दूसरे समस्त दोष दूर हो जाते हैं। यह मार्दवधर्म ही जन्ममरणरूप समुद्रसे जीवोंको पार करता है ॥ ५ ॥

सम्मद्दंसणअंगु, मद्दउ परिणामु जि मुणहु।
इय परियाणि वि चित्त, मद्दउ धम्म अमल थुणहु ॥ ६ ॥

अर्थ—यह मार्दवधर्म आत्माका एक परिणाम है और सम्यग्दर्शनका अंग है। ऐसा जानकर अपने चित्तमें इस निर्मल मार्दवधर्मको धारण करो और सदा इसकी स्तुति करते रहो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं मार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अथार्जवधर्मांगम् ।

आर्जवं क्रियते सम्यग्दुष्टबुद्धिश्च त्यज्यते ।
पापचिन्ता न कर्त्तव्या श्रावकैर्धर्मचिन्तकैः ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ—धर्मका चिन्तन करनेवाले श्रावकोंको उचित है कि वे अपने परिणाम सदा सरल रक्खें और दुष्टबुद्धिका सदा त्याग करें, तथा कभी पापरूप कार्योंका चिन्तवन न करें । यही उत्तम आर्जव धर्म है ॥ ३ ॥

धम्मह वरलक्खणु अज्जव थिरमणु दुरियविहंडणु सुहजणणु ॥
तं इच्छ जि किज्जइ तं पालिज्जइ तं णि सुणिज्जइ खइजणणु ॥ १ ॥

अर्थ—धर्मका उत्तम लक्षण आर्जव ही है। मन वचन कायकी सरलताका नाम आर्जवधर्म है। यह आर्जवधर्म स्थिरमनसे किया जाता है। समस्त पापोंको दूर करनेवाला और सुखको देनेवाले यह आर्जव धर्म ही है। इसलिये समस्त कर्मोंके क्षय करनेवाले इस आर्जवधर्मके सेवन करनेकी इच्छा करो, पालन करो, और ध्यानसे सुनो ॥ १ ॥

जारिसु णियचित्तिहि चिंतिज्जइ। तारिसु अण्णह पुण भासिज्जइ ॥
किज्जइ पुण तारिसु सुहसंचणु। तं अज्जवगुण मुणह अवंचणु ॥ २ ॥

अर्थ—जो जीव जैसा अपने चित्तमें चिन्तवन करै, वैसा ही दूसरेके लिये कहै और फिर वैसा ही करै, उसको ही समस्त सुखोंका संचय करनेवाला वंचकतारहित आर्जवगुण जानो। भावार्थ—सरल परिणामोंसे मनवचनकायकी एकसी क्रिया करके जो दूसरेको धोखा नहीं देना वही आर्जव गुण है ॥ २ ॥

मायासल्लु मणहु णीसारहु। अज्जवधम्मु पवित्तु वियारहु ॥
वउ तउ मायावियहु णिरत्थउ। अज्जउ सिवपुरपंथहु सत्थउ ॥ ३ ॥

अर्थ—भो भव्यजनो ! अपने चित्तसे मायाशल्यको निकालकर इस पवित्र आर्जव धर्मका विचार करो। मायावी अर्थात् कपट करनेवाले पुरुषके व्रत करना तप करना आदि सभी व्यर्थ हैं। और यह आर्जवधर्म मोक्ष जानेके लिये सहायक है।

भावार्थ—माया एक शल्य है। शल्य वाणको कहते हैं। हृदयमें चुभा हुआ वाण जैसे दुःखदायी होता है, उसी तरह माया भी दुःखप्रदा है। इसलिये मायाको चित्तसे निकालकर मोक्षके देनेवाले इस आर्जवधर्मका चिंतवन करो॥ ३॥

जत्थ कुटिलपरिणाम चइज्जइ। तहिं अज्जवधम्म जु संपज्जइ॥
दंसणणाणसरूव अखंडउ। परमअतिंदिय सुक्खकरंडउ॥ ४॥
अप्पे अप्पहु भवहु तरंडउ। एरिसु चेयणभाव पयंडउ॥
सो पुण अज्जउ धम्मे लब्भइ। अज्जवेण वयरिउ मण खुब्भइ॥५॥

अर्थ—जहां कुटिलपरिणामोंका त्याग किया जाता है, वहीं आर्जव धर्म उत्पन्न होता है। अर्थात् कुटिल परिणामोंका त्याग करना ही आर्जवधर्म है। आत्मामें जो इस चैतन्यके ऐसे प्रचण्डभाव उत्पन्न होते हैं जो कि

सम्यग्दर्शनरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, अविनाशिक, अतीन्द्रिय, परमसुखके स्थानभूत हैं और आत्माको इस संसारसे तारनेवाले हैं, वे परिणाम आर्जवधर्मसे ही प्राप्त होते हैं और आर्जवधर्मके होनेसे शत्रुका मन भी क्षुभित हो जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आर्जवधर्मसे ही प्राप्त होते हैं। यही आर्जवधर्म संसारसे पार कर देनेवाला है और इस लोकमें भी शत्रु आदिसे बचानेवाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥

घत्ता ।

अज्जउ परमप्पउ गयसंकप्पउ चिम्मित्तु जि सासउ अभओ ।
तं णिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ जइ अचलपओ॥६॥

अर्थ—अब निश्चयनयसे आर्जवका स्वरूप कहते हैं कि, संकल्परहित, संगरहित, नित्य और अभयस्वरूप जो परमात्मा है, वही आर्जव है। ऐसे परमात्माका संशयरहित होकर ध्यान करना चाहिये। इसके ध्यान करनेसे अचलपद अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ सत्यधर्मांगम् ।

असत्यं सर्वथा त्याज्यं दुष्टवाक्यं च सर्वदा ।
परनिन्दा न कर्त्तव्या भव्येनापि च सर्वदा ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तपसत्यधर्मांगाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा । ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय फलं निर्वपामीति स्वाहा । ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अर्थ—भव्यपुरुषको झूठ बोलनेका और गाली गलौज आदि दुष्टवचनोंका सर्वथा सदा त्याग करना चाहिये और दूसरोंकी निन्दा करनेका भी त्याग करना चाहिये । यही सत्य धर्म है ॥ ४ ॥

दयधम्मह कारण दोसणिवारण इहभवपरभवसुक्खयरू ।
सच्चु वि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ बोलिज्जइ वीसासघरू ॥ १ ॥

अर्थ——सत्यवचन दया धर्मके मूलकारण हैं, समस्त दोषोंको दूर करनेवाले हैं, और इस भव तथा परभवमें सुखके देनेवाले हैं। वचनोंमें उत्कृष्ट सत्य वचन ही हैं। सत्यवचन संसारमें निरुपमेय हैं, अर्थात् सत्यकी तुलना किसीके भी साथ नहीं हो सकते। तथा विश्वासके स्थानभूत हैं। ऐसे सत्यवचन सदा बोलने चाहिये ॥१॥

सच्चु जि सव्वह धम्मह पहाण। सच्चु जि महियलि गरुओ विहाण ॥
सच्चु जि संसारसमुद्दसेउ । सच्चु जि सव्वह मणसुक्खहेउ ॥ २ ॥

अर्थ——सत्यधर्म ही समस्तधर्मोंमें प्रधान धर्म है। इस भूमंडलमें सत्यधर्मका विधान ही उत्कृष्ट कहा है। सत्यधर्म ही संसाररूप समुद्रसे पार होनेके लिये पुल है, अर्थात् संसारसे पार करनेका कारण है और सत्यधर्म ही निखिल जीवोंके चित्तको सुख देनेवाला है ॥ २ ॥

सच्चेण जि सोहइ मणुवजम्मु । सच्चेण पवित्तउ पुण्णकम्मु ॥
सच्चेण सयलगुणगण महंति । सच्चेण तियस सेवा वहंति ।
सच्चेण अणुव्वय महवयाइ । सच्चेण विणासइ आवयाइ ॥ ३ ॥

अर्थ—यह मनुष्यजन्म सत्यधर्मसे ही शोभायमान होता है और सत्यसे ही पवित्र पुण्यकर्मोंका संचय होता है। इस सत्यधर्मसे अन्य समस्तगुणोंका समूह पूज्य गिना जाता है, अर्थात् सत्यधर्मके होनेसे अन्य गुणोंकी महिमा वढती है और इस सत्यधर्मसे ही स्वर्गनिवासी देवगण मनुष्योंकी सेवा करते हैं। इस सत्यधर्मके होते हुए अणुव्रत और महाव्रत पालन हो सकते हैं और सत्यधर्मसे ही समस्त आपत्तियां नाश हो जाती हैं ॥ ३ ॥

हियमिय भासिज्जइ णिच्चभास । णवि भासिज्जइ परदुहपयास ॥
परबाहायर भासहु म भव्व । सच्चु जि तं छंडहु विगइगव्व ॥ ४ ॥

अर्थ—अब व्यवहार सत्यधर्मका स्वरूप कहते हैं कि, भो भव्यजीवो ! सदा हितरूप और परिमित वचन कहो। दूसरेको दुःख पहुंचानेवाले वचन कभी मत कहो और न दूसरेको किसी तरहकी बाधा करनेवाले वचन कहो। गर्वरहित उपर्युक्त वचनोंका त्याग करो, यही सत्यधर्म है ॥ ४ ॥

सच्चु जि परमप्पउ अत्थि इक्क । सो भावहु भवतमदलणअक्क ॥
रुंधिज्जइ मणवयकायगुत्ति । जं खणि फिट्टइ संसार अत्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—संसाररूप अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान एक जो परमात्मा है, वही सत्यधर्म है । ऐसा चिन्तन करो और मन वचन कायकी क्रियाका रोकना, अर्थात् मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्तिका पालन करना भी सत्यधर्म है । क्योंकि यह गुप्तिरूप धर्म जिस क्षणमें होता है, उसी समयमें संसारके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं । यह निश्चय सत्यका स्वरूप जानना ॥ ५ ॥

घत्ता ।

सच्चु जि धम्मफलेण, केवलणाण लहेइ जणु ।
तं पालहु भो भव्व, भणहु म अलिय उइह वयणु ॥ ६ ॥

अर्थ—भो भव्य ! इस सत्यधर्मके फलसे मनुष्योंको केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है । इसलिये इस सत्यधर्मका पालन करना चाहिये और मिथ्यावचन कभी नहीं बोलने चाहिये ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अथ शौचधर्मांगम् ।

बाह्यमाभ्यन्तरं चापि मनोवाक्कायशुद्धिभिः ।
शुचित्वेन सदा भाव्यं पापभीतैः सुश्रावकैः ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ—जो महाश्रावक पापसे भयभीत हैं, उनको मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक बाह्य शरीरादिक और अभ्यन्तर आत्माको सदा उज्वल रखना चाहिये । यही शौचधर्म है ॥ ५ ॥

सउच जि धम्मंगउ तं जि अभंगउ भिण्णंगउ उवओगमओ ।
जरमरणविणासणु तिजगपयासणु झाइज्जइ अहणिसि जि धुओ॥१॥

अर्थ—यह शौचधर्म धर्मका एक अंग है। अभंग है। शरीरसे भिन्न है, अर्थात् यह शौच शरीरादिकके स्नानसे भिन्नरूप है। यह शौचधर्म ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वरूप है। जन्म जरा मरणादिकका नाश करनेवाला है और तीनों जगतका प्रकाश करनेवाला है। इसलिये इस धर्मका निश्चयरूपसे अहर्निश ध्यान करना चाहिये ॥ १ ॥

धम्म सउच्च होइ मणसुद्धइ। धम्म सउच्च वयणधणविद्धइ ॥
धम्म सउच्च लोह वज्जंतउ। धम्म सउच्च सुतवपहि जंतउ ॥ २ ॥

अर्थ—मनको अत्यन्त शुद्ध रखनेसे यह उत्तम शौचधर्म होता है और यही शौचधर्म शास्त्ररूप धनकी अत्यन्त वृद्धि करनेसे होता है। अर्थात् शास्त्रज्ञानकी वृद्धि होनेसे ही शौचधर्मका पालन होता है। यह शौचधर्म उसी मनुष्यके होता है, जिसने लोभकषायका त्याग कर दिया है और जो श्रेष्ठतप करनेके मार्गमें जा रहा है, उसके यह शौचधर्म होता है ॥ २ ॥

धम्म सउच्च बंभवयधारणु। धम्म सउच्च मयट्ठणिवारणु ॥
धम्म सउच्च जिणायमभणणे। धम्म सउच्च सुगुणअणुमणणे ॥३॥

अर्थ——ब्रह्मचर्यव्रतका धारण करना ही शौचधर्म है और ज्ञानमद, पूजामद, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरका मद निवारण करना अर्थात् इन आठों ही मदोंको न करना ही शौचधर्म है। जैनशास्त्रोंके पठन करनेसे शौचधर्मका पालन होता है और उत्तम उत्तम गुणोंके मनन करने व विचार करनेसे शौचधर्म होता है ॥ ३ ॥

धम्म सउच्च सल्लकयचाये। धम्म सउच्च सुणिम्मलभाये ॥
धम्म सउच्च कसायअहावे। धम्म सउच्च ण लिप्पइ पावे ॥ ४ ॥

अर्थ——माया मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंके त्याग करनेसे शौचधर्म होता है तथा आत्माके निर्मल परिणाम होनेसे शौचधर्म होता है। क्रोध मान माया और लोभ इन चारों कषायोंका अभाव होनेसे शौचधर्म होता है तथा पापरूपपंकसे लिप्त न होना ही शौचधर्म है ॥ ४ ॥

अहवा जिणवरपुज्जविहाणे। णिम्मलफासुयजलकय ण्हाणे ॥
तं पि सउच्च गिहत्थह भासिउ। णवि मुणिवरह कहिउ लोयासिउ ॥५॥

अर्थ——निश्चय शौचका कथन करके अब लौकिक शौचको कहते हैं कि— अथवा जिनेन्द्रदेवके पूजादिक विधानोंमें निर्मल प्रासुक जलसे जो स्नान करना है, वह भी गृहस्थोंके लिये शौचधर्म कहा है। लोकमें प्रचलित स्नानादिक शौच गृहस्थों-के ही लिये है, मुनियोंके लिये नहीं है ॥ ५ ॥

घत्ता।

भउ मुणिवि अणिच्चउ धम्म सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणि।
सुहमग्गसहायउ सिवपयदायउ अण्ण म चिंतइ किंपि खणि ॥ ६ ॥

अर्थ——इस संसारको अनित्य जानकर एकाग्र मनसे इस शौचधर्मका पालन करो। यह शौचधर्म शुभमार्गका सहाय करनेवाला है और मोक्षका देनेवाला है। इसलिये इसको छोडकर अन्य किसीका क्षणभर भी चिन्तन मत करो। इसीका चिंतन अहर्निश करो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

अथ संयमधर्मांगम् ।

संयमं द्विविधं लोके कथितं मुनिपुङ्गवैः ।
पालनीयं पुनश्चित्ते भव्यजीवेन सर्वदा ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय पुष्पं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय दीपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय धूपं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय फलं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ—मुनियोंमें श्रेष्ठ ऐसे गणधरादिक देवोंने संयम दो प्रकारका कहा है। एक बाह्य संयम और दूसरा आभ्यन्तर संयम । सो भव्यजीवोंको अपने चित्तमें दोनों प्रकारका संयम सदा पालन करना चाहिये ॥ ६ ॥

संजमु जाणि दुलहु तं पाविल्लहु जो छंडइ पुण मूढमई ।
सो भमइ भवावलि जरमरणावलि किं पावे सो पुण सुगई ॥ १ ॥

अर्थ—इस संसारमें संयमका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है, इसलिये इस संयमको पाकर जो छोड देता है, वह महामूर्ख है और वह जन्ममरणकी संततिरूप संसारकी अगणित परम्परामें चिरकालतक परिभ्रमण करता है। और इसतरह संयमरहित संसारमें परिभ्रमण करते हुएको श्रेष्ठ गति फिर कैसे मिल सकती है? कभी नहीं, इसलिये संयमको पाकर फिर नहीं छोडना चाहिये ॥ १ ॥

संजमु पंचेंदियदंडणेण। संजमु जि कसाय विहंडणेण ॥
संजमु दुद्धरतवधारणेण। संजमु रसचाइवियारणेण ॥ २ ॥

अर्थ—स्पर्शन रसन, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंको वश करनेसे संयम होता है। क्रोधादिक कषायोंके खंडन करने अर्थात् नाश करनेसे संयम होता है। दुर्द्धर (जो कठिनतासे धारण किया जाय ऐसे) तपके धारण करनेसे संयम होता है और तिक्त, कटु, कषाय, मधुर आदिक रसोंके त्याग करने और त्यागके विचार करनेसे उत्तम संयमधर्म प्राप्त होता है ॥ २ ॥

संजमु उववासविजंभणेण । संजमु मणपसरह थंभणेण ॥
संजमु गुरुकायाकिलेसणेण । संजमु परिगहागिह चायएण ॥ ३ ॥

अर्थ—चंचलमनका प्रसार रोकनेसे संयम होता है । अत्यन्त कायक्लेश करनेसे संयम होता है । उपवास वेला तेला आदि करनेसे संयम होता है और परिग्रह ग्रहके त्याग करनेसे संयम होता है ॥ ३ ॥

संजमु तसथावररक्खणेण । संजमु तिणिजोयणियंतणेण ॥
संजमु सुत्तत्थपरिरक्खणेण । संजमु बहुगमणचयंतणेण ॥ ४ ॥

अर्थ—त्रस और स्थावर जीवोंकी रक्षा करनेसे संयम होता है । मन वचन काय रूप तीन योगोंके नियंत्रणसे संयम होता है । सूत्रोंके अर्थकी परीक्षा करनेसे अर्थात् पठन पाठन और विवेचन करनेसे संयम होता है और अधिक गमनका त्याग अर्थात् थोड़ा परिमित गमन करनेसे भी संयम होता है ॥ ४ ॥

संजमु अणुकंपकुणंतणेण । संजमु परमत्थवियारणेण ॥

संजमु पोसइ दंसणह पंथु। संजमु णिच्छय णरुमोक्खपंथु ॥५॥

अर्थ—अनुकंपा अर्थात् दया करनेसे संयम होता है और परमार्थका विचार करनेसे संयम होता है। यह संयम सम्यग्दर्शनके मार्गको पुष्ट करता है और निश्चय नयसे मनुष्यके लिये मोक्षका मार्ग संयम ही है ॥ ५ ॥

संजमु विणु णरभव सयलु सुण्ण । संजमुविणु दुग्गइ जिय उपण्ण ॥
संजमु विणु घडिय म इत्थ जाउ। संजमु विणु विहलिय अत्थिआउ॥६॥

अर्थ—विना संयमके मनुष्यभाव ही व्यर्थ है। अर्थात् संयम धारण करनेके लिये इन्द्रादिकदेव मनुष्यपर्याय पानेकी इच्छा करते रहते हैं। इसलिये मनुष्यभवको पाकर जो संयम धारण नहीं किया तो उसका यह जन्म व्यर्थ ही गया। इसी संयमके बिना यह जीव सदा दुर्गतिमें उत्पन्न होता है। इसालिये इस जीवको सदा ऐसा चिन्तवन करना चाहिये कि विना संयमके मेरी एक घडी भी व्यर्थ न जावे। क्योंकि बिना संयमके यह आयु भी निष्फल है ॥ ६ ॥

घत्ता ।

इहभव परभव संजमु सरणु हुज्जउ जिणणाहें भणिओ ।
दुग्गइसरसोसण खरकिरणोवम जेण भवारि विसमु हणिओ ॥७॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेवने ऐसा कहा है कि मनुष्यको इस भव और परभवमें संयम ही शरण है । दुर्गतिरूप सरोवरके शोषण करनेके लिये यह तीव्र किरण सूर्यके समान है । संसाररूपी विषम शत्रु इसी संयमके द्वारा नाश किया जाता है ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अथ तपोधर्मांगम् ।

द्वादशं द्विविधं चैव बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
स्वयं शक्तिप्रमाणेन क्रियते धर्मवेदिभिः ॥७॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय चन्दनं नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अक्षतान् नि० । ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय पुष्पं नि० । ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय दीपं नि० । ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय धूपं नि० । ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय फलं नि० । ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थ—बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तपके दो भेद होते हैं तथा आभ्यन्तरके छह और बाह्यके छह इसतरह कुल बारह भेद होते हैं। सो धर्म जाननेवाले भव्य पुरुषोंको यह उत्तम तप अपनी अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये ॥७॥

णरभवपावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु खंचिवि पंचेंदिय समणु ।
णिव्वेउ पमंडिवि संगइ छंडिवि तउ किज्जइ जाए वि वणु ॥१॥

अर्थ—मनुष्यभवको पाकर समस्त तत्त्वोंका ज्ञान सम्पादन करना चाहिये और फिर पांचों इन्द्रिय और मनके व्यापारको रोककर वैराग्य धारण कर समस्त परिग्रहको छोडना चाहिये और पश्चात् वनमें जाकर यह उत्तम तप करना चाहिये ॥ १ ॥

तं तउ जहिं संगइ छंडिज्जइ । तं तउ जहिं मयणु वि खंडिज्जइ ॥
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ । तं तउ जहिं गिरिकंदरि णिवसइ ॥२

अर्थ—वह तप जहां बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग किया जाता है वहीं होता है। वह तप जहां कामदेव वशमें किया जाता है वहां होता है। वह तप वहीं है कि जहां साक्षात् दिगम्बरपरना दिखाई पडे, अर्थात् बिना दिगम्बर मुद्राके तप नहीं हो सकता। और तप वही है कि जिसके करनेमें पहाडकी गुफाओंमें निवास करना पडै ॥ २ ॥

तं तउ जहिं उपसग्ग सहिज्जइ । तं तउ जहिं रायाइ जिणिज्जइ॥
तं तउ जहिं भिक्खइ भुंज्जिजइ । सावयगेह काल णिवसज्जइ ॥३॥

अर्थ—जिसमें अनेक प्रकारके उपसर्ग सहन किये जाते हैं वही तप है। तप

वह है जहां रागादिक विभाव परिणाम क्षय होते हैं और जिसमें योग्य कालमें श्रावकके घर जाकर भिक्षाभोजन किया जाता है ॥ ३ ॥

तं तउ जत्थ समिदिपारिपालणु । तं तउ गुत्तित्तयह णिहालणु ॥
तं तउ जहिं अप्पापरबुज्झइ । तं तउ जहिं भव माणु जि उज्झइ ॥४॥

अर्थ—जिसमें पाचों समितियोंका पालन किया जाता है वह तप है। तथा जिसमें मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिका पालन किया जाता है वह तप है। जिसमें अपना आत्मा और आत्मासे भिन्न शरीरादिक पुद्गलोंका ज्ञान होता है वह तप है, और जिसमें संसारके बढानेवाले मान माया क्रोध लोभादिकका त्याग किया जाता है वह तप है ॥ ४ ॥

तं तउ जहिं ससरूव मुणिज्जइ । तं तउ जहिं कम्मह गण खिज्जइ ॥
तं तउ जहिं सुरभत्तिपयासइ । पवयणत्थ भवियणह पभासइ ॥५॥

अर्थ—जिसमें केवल आत्माके स्वरूपका ज्ञान होता है उसे तप कहते हैं। जिसमें निखिल कर्मोंके समूह नाश होते हैं उसको तप कहते हैं। तप वही है कि

जिसकी इन्द्रादिक देव भी भक्ति प्रकट करें—स्तुति करें । भव्यपुरुषोंके उपकारके लिये शास्त्रोंको व शास्त्रोंके अर्थको सुनाना, पढना पढाना भी तप है ॥ ५ ॥

जेण तवे केवलु जि उपज्जइ । सासइ सुक्ख णिच्च संपज्जइ ॥६॥

अर्थ—तप वही प्रशंसनीय है कि जिसके द्वारा केवल ज्ञान ही उत्पन्न हो और नित्य अविनाशी मोक्षसुखकी प्राप्ति हो ॥ ६ ॥

घत्ता ।

बारहविहु तउवरु दुग्गइपहहरु तं पुज्जिज्जइ थिरमणेण ।
मच्छरुमयछंडिवि करणइ दंडिवि तं पि धरिज्जइ गउरवेण ॥७॥

अर्थ—यह श्रेष्ठ बारह प्रकारका तप दुर्गतियोंके मार्गको हरण करनेवाला है । इसलिये स्थिर मनसे इसकी पूजा करनी चाहिये तथा मत्सरता और मदको छोड़कर पांचों इन्द्रियोंको वशमें करके यह उत्तम तप पुरुषोंको बडे गौरवके साथ धारण करना चाहिये ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अथ त्यागधर्मांगम् ।

चतुर्विधाय संघाय दानं चैव चतुर्विधम् ।
दातव्यं सर्वदा सद्भिश्चिन्तकैः पारलौकिकैः ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय चन्दनं नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अक्षतान् नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय पुष्पम् नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय नैवेद्यं नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय दीपम् नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय धूपम् नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय फलम् नि०। ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थ—आहारदान, औषधदान, अभयदान और ज्ञानदान ऐसे दान चार प्रकारका है। सो परलोकका चिन्तन करनेवाले सज्जनोंको उक्त चारों प्रकारका दान मुनि आर्जिका श्रावक और श्राविकाओंके ऐसे चार प्रकारके संघके लिये सदा देना चाहिये ॥ ८ ॥

चाउ वि धम्मंगउ तं जि अभंगउ णियसत्तिए भत्तिए जणहु ।
पत्तह सुपवित्तह तवगुणजुत्तह परगइसंवलु तं मुणहु ॥ १ ॥

अर्थ—दानदेना भी धर्मका एक अंग है, इसलिये इसको भक्तिपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार पूर्णरीतिसे करना चाहिये और तप और गुणोंकर सहित ऐसे पात्र और सुपात्रके लिये सदा करना चाहिये। दान देना ही परगतिके लिये पाथेय (मार्गमें खाने योग्य पदार्थ) है, ऐसा जानो ॥ १ ॥

चाए आवागमण उहट्टइ। चाए णिम्मलकित्ति पवट्टइ ॥
चाए अरिगण पणविइ पाए। चाए भोगभूमिसुह जाए ॥ २ ॥

अर्थ—दानदेनेसे आवागमनका या जन्म मरणका नाश हो जाता है। दान देनेसे चारों ओर निर्मल कीर्ति फैलती है। दान देनेसे शत्रुसमूह भी पैरोंपर पड़कर नमस्कार करता है और दान देनेसे भोगभूमिके सुख मिलते हैं ॥ २ ॥

चाए विहिज्जइ णिच्च जि विणयं। सुहवयणइ भासेप्पणु पणयं।
अभय दाणु दिज्जइ पहिलारउ। जिम णासइ परभवदुहयारउ ॥ ३ ॥

अर्थ—दान देनेमें नित्य ही विनय प्रकट करनी चाहिये और प्रेमपूर्वक शुभ

वचन कहने चाहिये। चारों दानोंमें सबसे प्रथम अभय दान देना चाहिये जिससे परभवके समस्त दुःखसमूहका नाश होवे। अर्थात् परभवके दुःख दूर करनेवाला अभयदान ही है, इसलिये यह प्रथम अर्थात् प्रधान दान कहा गया है ॥ ३ ॥

सत्थदान वीजउ पुण किज्जइ। णिम्मलणाण जेण पाविज्जइ ॥
ओसह दिज्जइ रोयाविणासणु। कहवि ण पिच्छइ वाहिपयासणु॥४॥

अर्थ—दूसरा दान शास्त्रदान अर्थात्—शास्त्र प्रदान करना, विद्या पढाना, पढते हुएको सहायतः करना, पाठशाला खोलना आदि करना चाहिये कि जिससे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति हो। क्योंकि शास्त्रदान या विद्यादानसे निर्मल केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। तीसरा समस्त रोगोंको नाश करनेवाला औषधदान देना चाहिये कि जिससे किसीतरहकी आधि व्याधि उत्पन्न न हो, अर्थात् औषध दान देनेसे सब आधि व्याधि रोगादिक दूर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

आहारे धणरिद्धि पवट्टइ। चउविउ चाउ जि एहु पवट्टइ ॥
अहवा दुट्ठवियप्पह चाए। चाउ जि एहु मुणहु समवाए ॥ ५ ॥

अर्थ—आहार दान देनेसे धन ऋद्धि आदिकी वृद्धि होती है। इसप्रकार अभय दान, शास्त्रदान, औषधदान और आहारदान ये चारों ही दान देने चाहिये। यह व्यवहारत्यागका स्वरूप कहा। अब 'अथवा' करके निश्चय त्यागका स्वरूप कहते हैं कि साम्यपरिणामोंसे जो दुष्टविकल्पोंका त्याग करना है, वही उत्तमत्याग है, ऐसा जानो॥५

घत्ता।

दुहियह दिज्जइ दाणु, किज्जइ माणु जि गुणियणह।
दय भावियइ अभंग, दंसणु चिंतज्जइ मणह॥ ६॥

अर्थ—संसारमें जो दुःखी जीव हैं उनको दान देना चाहिये और जो गुणी पुरुष हैं, अर्थात् जो सम्यग्दर्शनादि गुणोंकर सहित हैं उनका विशेष सत्कार करना चाहिये। समस्त जीवोंपर अटल दयाकी भावना होनी चाहिये और दर्शनकी सदा अभिलाषा रखनी चाहिये। यही त्याग धर्म है॥ ६॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

अथाकिंचन्यधर्मांगम् ।

चतुर्विंशतिसंख्यातो यः परिग्रहभेदतः ।
तस्य संख्या प्रकर्त्तव्या तृष्णारहितचेतसा ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिञ्चिन्यधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय चन्दनं नि० । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अक्षतान् नि०। ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय पुष्पं नि० । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय दीपं नि० । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय धूपं नि०। ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय फलं नि० । ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति ॥९॥

अर्थ——जो बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहके भेदसे चौवीसप्रकारका परिग्रह कहा है उसका नियम तृष्णारहित चित्त होकर करना चाहिये ॥ ९ ॥

आकिंचणु भावहु अप्पहु झावहु देहह भिण्णउ णाणमओ ।
णिरुवमगयवण्णउ सुहसंपण्णउ परमअतिंदिय विगयभओ ॥१॥

अर्थ—शरीरसे भिन्न, ज्ञानस्वरूप, उपमारहित, वर्णगंधादिक रहित, सुखसे सम्पन्न,

परम अतीन्द्रिय और भयादिकसे रहित आत्माका ध्यान करो और यही अर्थात् शुद्ध आत्माका ध्यान करना ही आकिञ्चन्य धर्म है, ऐसा चिन्तन करो ॥ १ ॥

आकिंचणु वउ संगह णिवित्ति । आकिंचणुवउ सुहझाणसत्ति ॥
आकिंचणुवउ वियलियममत्ति । आकिंचणु रयणत्तयपवित्ति ॥ २ ॥

अर्थ—समस्त परिग्रहका त्याग करना आकिंचन्यव्रत है, तथा आत्मामें शुभध्यानकी शक्ति प्रकट होना सो आकिंचन्यव्रत है । ममत्व परिणामोंका त्याग करना अर्थात् चेतन अचेतनात्म द्रव्योंके अर्जन रक्षणादिककी इच्छाका त्याग करना आकिंचन्य व्रत है । रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्रकी प्रवृत्ति करना, अर्थात् इनको धारण करना आकिंचन्यव्रत है ॥ २ ॥

आकिंचणु आउञ्चियइ चित्त । पसरंतउ इंदियवणु विचित्तु ॥
आकिंचणु देहह णेह चत्तु । आकिंचणु जं भवसुहविरत्तु ॥ ३ ॥

अर्थ—इन्द्रियरूपी विचित्रवनमें यथेष्ट विहार करतेहुए मनको संकुचित करना अर्थात् मनकी प्रवृत्तिको रोकना सो आकिंचन्यव्रत है । तथा शरीरसे स्नेह (ममत्वपरि-

णाम) छोडना आर्किचन्य है । संसारके सुखोंसे विरक्त होना अर्थात् संसारके सुखोंका और उनके साधनोंका त्याग करना सो आर्किंचिन्य व्रत है ॥ ३ ॥

तिणमत्तपरिग्गह जत्थ णत्थि । आकिंचणु सो णियमेण अत्थि ॥
अप्पापर जत्थ वियारसत्ति । पयडिज्जइ जहिं परमेट्ठिभत्ति ॥ ४ ॥

अर्थ—जहां तृणमात्र भी परिग्रह नहीं है वहीं नियमसे आकिंचन्यव्रत होता है। जहां आत्मा और पर अर्थात् पुद्गलके विचार करनेकी आसक्ति प्रकट होती है तथा जहां पंच परमेष्ठीकी भक्ति की जाती है वही आकिंचन्यव्रत जानना ॥ ४ ॥

छंडिज्जइ जहिं संकप्प दुट्ठ । भोयणु वंछिज्जइ जहिं अणिट्ठ ॥
आकिंचणु धम्मु जि एम होइ । तं झाइज्जइ णिरु इत्थ लोइ ॥ ५ ॥

अर्थ—जहां दुष्ट संकल्पोंका त्याग किया जाता है और अनिष्ट नीरस भोजन की इच्छा की जाती है वही आकिंचिन्य धर्म है । इस लोकमें निरन्तर इसीका ध्यान किया जाता है ॥ ५ ॥

घत्ता ।

एयहु जि एहावें लद्धसहावें तित्थेसर सिवणयरि गया ।
गयकामवियारा पुण रिसिसारा वंदणिज्ज ते तेण सया ॥ ६ ॥

अर्थ—इसी आकिंचिन्यधर्मके प्रभावसे और इसीकी सहायतासे श्रीतीर्थंकर परमदेव मोक्ष पधारे हैं। तथा और भी जो कामदेवके विकारोंसे रहित ऋषीश्वर हैं वे भी इसी आकिंचिन्यधर्मके प्रभावसे सदा वंदनीय और पूज्य हुए हैं ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ ब्रह्मचर्यधर्मांगम् ।

नवधा सर्वदा पाल्यं शीलं सन्तोषधारिभिः ॥
भेदाभेदेन संयुक्तं सद्गुरूणां प्रसादतः ॥ १० ॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा । ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय चन्दनं नि०। ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अक्षतान् नि०। ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय पुष्पं नि० । ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय नैवेद्यं नि० । ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय दीपं नि० । ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय धूपं नि०। ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय फलं नि० । ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अर्थ—सन्तोषके धारण करनेवाले भव्यजीवोंको श्रेष्ठ गुरुओंके प्रसादसे भेद तथा अभेदरूप नौ प्रकारका शील या ब्रह्मचर्य सदा पालन करना चाहिये॥ १० ॥

बंभव्वउ दुद्धरु धारिज्जइ वरु फेडिज्जइ विसयास णिरु ।
तियसुक्खइ रत्तउ मणुकरिमत्तउ तं जि भव्व रक्खेहु थिरु ॥ १ ॥

अर्थ—हे भव्यपुरुषो! ब्रह्मचर्यव्रत महा दुर्द्धर है, इसलिये विषयोंकी आशाको दूर कर इसको भलेप्रकार अवश्य धारण करना चाहिये और स्त्रीसुखमें लीन हुए मदोन्मत्त मनरूपी हाथीसे रक्षा करके स्थिर करना चाहिये ॥ १ ॥

चित्तभूमि मयणु जि उप्पज्जइ । तेण जि पीडिउ करइ अकज्जइ ॥
तियह शरीरइ णिंदिय सेवइ । णियपरणारि ण मूढउ वेयइ ॥ २ ॥

अर्थ—कामदेव चित्तरूपी भूमिमें उत्पन्न होता है, उससे पीड़ित हुआ मनुष्य अन्याय और अकार्य करता है, स्त्रियोंके अत्यन्त निन्दित शरीरको सेवन करता है और वह मूर्ख फिर स्वस्त्री और परस्त्रीको भी नहीं देखता ॥ २ ॥

णिवडइ णरइ महादुख भुंजइ । सो हीणु जि बंभव्वउ भंजइ ॥
इय जाणेप्पिणु मणवयकाये । बंभचेरु पालहु अणुराये ॥ ३ ॥

अर्थ—जो ब्रह्मचर्यव्रतका पालन नहीं करता वह नीच जीव नरकमें पड़कर महादुःख भोगता है। ऐसा जानकर ब्रह्मचर्यव्रतको मनवचनकायके द्वारा प्रेमपूर्वक पालन करो ॥ ३ ॥

तेण सहु जि लब्भइ भवपारउ । बंभं विण वउ तउ जि असारउ ॥
बंभव्वय विणु कायकिलेसो । विहल सयल भासयइ जिणेसो ॥ ४ ॥

अर्थ—समस्त जीव इस ब्रह्मचर्यके होनेसे ही संसार समुद्रसे पार होते हैं। ब्रह्मचर्यके विना व्रत करना, तप करना, सब व्यर्थ है। और विना ब्रह्मचर्यके समस्त कायक्लेश व्यर्थ है, ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ४ ॥

बाहिरफरसोंदियसुह रक्खहु । परम बंभु अब्भंतर पिक्खहु ॥
एण उवाए लब्भइ सिवहरु । इम रइधू बहुभणइ विणइयरु ॥ ५ ॥

अर्थ—बाह्य स्पर्शनेन्द्रियसे आत्माकी रक्षा करो, अर्थात् उससे बचो और आत्मामें ही परम ब्रह्मचर्यको देखो। भावार्थ—आत्मामें लीन होना ही परम ब्रह्मचर्य है, सो बाह्य स्पर्शनेन्द्रियके सुखोंसे बचकर आत्मामें लीन होनेसे ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। इसी उपायसे अर्थात् आत्मामें लीन होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा रइधू नामा कवि अतिशय विनयके साथ वारंवार कहते हैं ॥ ५ ॥

जिणणाह महिज्जइ मुणिपणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु ।
भो खेमसींहसुय भव्वविणयजुय होलुव मण इह करहु थिरु ॥ ६ ॥

अर्थ—श्रीजिनेन्द्रदेव भी इस दशलाक्षणिकधर्मकी महिमा वर्णन करते हैं और श्रीमुनिराज भी इसको प्रणाम करते हैं, इसलिये हे भव्यो ! इसका नित्य पालन करो और श्रीखेमसिंहके अतिशय विनयवान् पुत्र होलूके समान अपने चित्तको स्थिर करो ॥ ६ ॥

इति श्रीपंडितबालारामजीकृत भाषाटीकासहित दशलाक्षणिकधर्मजयमाला समाप्त ।

समुच्चय आरती ।

इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपिंजरं ।
नीरोयं अजरामरं ते लहंति सुक्खं परं ॥ १ ॥
जेण मोक्खफलु तं पाविज्जइ, सो धम्मंगो एहहु किज्जइ ।
खमखम्मायलु तुंगय देहउ, मद्दउ पलुउ अज्जउ साहउ ॥
सच्च सउच्च मूल संजम दलु, दुविह महातव णवकुसुमाउलु ।

चउविह चाउ पसारिय-परमलु, पीणियभव्वलोयछप्पइयलु ॥
दियसंदोह सद्द कलकलयलु, सुरणरवरखेयर सुहसय फलु ।
दीणाणाहदीहसमाणिग्गहु, सुद्ध सोमतणुमत्तपरिग्गहु ॥
बंभचेरु छायाइ सुहासिउ, रायहंस नियरेहि समासिउ ।
एहउ धम्मरुक्ख लाखिज्जइ, जीवदयावयणहि राखिज्जइ ॥
झाणठाण भल्लारउ किज्जइ, मिच्छामयउ पवेस ण दिज्जइ ।
सीलसलिलधारहि सिंचिज्जइ, एम पयत्ते बड्ढारिज्जइ ॥

घत्ता ।

कोहानल चुक्कउ, होउ गुरुकउ, जाइ रिसिंदिय सिद्धगई ॥
जगताइ सुहंकरु, धम्ममहातरु, देइ फलाइ सुमिट्ठमई ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्थ—इस तरह कर्मोंकी निर्जरा करके जो भवपींजरेको नष्ट करते हैं वे रोगरहित, अजर और अमर सुखको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ जिससे मोक्षफल प्राप्त होता

है उस धर्मांगका पालन करना चाहिए। आगे दशलक्षण धर्मको वृक्षकी उपमा देते हुए कहते हैं कि जिस तुंगदेह या बड़े भारी शरीरवाले वृक्षका क्षमाधर्म तो क्षमातल या पृथ्वीतल है जिसपर कि यह वृक्ष खड़ा हुआ है, मार्दवरूप पल्लव (कोमल पत्ते) हैं, आर्जव शाखायें हैं, सत्य और शौच मूल हैं, संयम पत्र हैं, दो प्रकार महातप-रूप पुष्प हैं, चार प्रकारका त्याग (दान) रूप सुगंध फैल रहा है; प्रीणित या प्रसन्न भव्यजन भौंरे हैं, सुर, नर, और खेचर (विद्याधर) पक्षी हैं जो कलकल शब्द करते हैं, सैकड़ों प्रकारके सुख फल हैं, दीन और अनाथोंके दीर्घ श्रमको मिटा-नेवाला जिसका शुद्ध और सौम्य शरीरमात्र परिग्रह (आकिंचन्य) है, जो ब्रह्म-चर्य रूप छायासे युक्त है और राजहंसके समूह जिसके आश्रयमें रहते हैं। इस प्रकार यह दशलक्षणधर्मरूप वृक्ष है, इसकी रक्षा करनी चाहिए, वचनोंमें जीवदया रखनी चाहिए, इस वृक्षके नीचे सुन्दर ध्यानका स्थान बनाना चाहिए। यहाँ मिथ्या मतका प्रवेश न होने देना चाहिए और शीलरूपजलकी धारासे इसका सिंचन करना चाहिए। इस तरह प्रयत्न करके इसकी वृद्धि करनी चाहिए।

क्रोधरूप अग्निको बुझाओ, गंभीर बनो जिससे श्रेष्ठ गति प्राप्त हो। सारे जगतको सुखी करनेवाला यह धर्मरूप महावृक्ष मीठे फल देनेवाला है ॥

पूजापाठके ग्रंथ।

१ नित्यनियमपूजा संस्कृत और भाषा। मू॰ ।-)
२ भाषापूजासंग्रह केवल भाष की पूजायें। मू॰ ॥=)
३ चौवीसी पूजापाठ कविवर वृन्दावनकृत। मू॰ १)
४ तीस चौवीसी पाठ ,, ,, । मू॰ १॥)
५ पंचपरमेष्ठीपूजा संस्कृत (बहुत सुन्दर)। मू॰ ।)
६ बृहत् निर्वाण विधान। हाल ही छपा है। मू॰ ।≡)
७ पूजा–विधानसंग्रह–सम्मेदशिखर पंचकल्याणक, कर्मदहनादि ५ विधान है, मूल्य ।=)

प्रद्युम्नचरित्र।

बड़ी सरल भाषामें हाल ही छपकर तैयार हुआ है। खुले पत्रे हैं। शास्त्रसभामें बाँचने लायक है। श्रीकृष्णनारायणके पुत्रका चरित्र बहुत ही मनोरंजक है। मू॰ ३॥)

नोटः—हमारे यहाँ सब प्रकारके सब जगहके छपे हुए जैनग्रन्थ मिलते हैं। सूचीपत्र मँगाइए।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई।